❀ श्रीकृष्णाय नमः ❀

... ते सार

SHRI BHAGWAT BHAKTI ASHRAM
REWARI.

प्रकाशक

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी

प्रथमावृत्ति	सन्	मूल्य
१०००	१९३२	≡)।

भूमिका

जिस प्रकार वेद संसार की धार्मिक पुस्तकों में सब से प्राचीन पुस्तक है इसी भान्ति मनुस्मृति संसार की स्मृतियों में सब से प्राचीन है। प्राचीनता के अतिरिक्त यह सब से श्रेष्ठ भी है। मनु जी संसार के (Low giver) कानून प्रदाता कहे जाते हैं और आज संसार के पुस्तकालयों में जो कानून के ग्रन्थ दिखाई देते हैं उन सबका आधार मनु धर्म शास्त्र ही है। कानून का इतना विस्तृत साहित्य होने पर भी यह धर्म शास्त्र सब से उत्कृष्ट है। मनुस्मृति के अध्ययन से मनुष्य अपना और अपने देश व समाज का बहुत हित साधन कर सकता है। इसमें वर्ण-धर्म्म, आश्रम धर्म, गुण धर्म, निमित्त धर्म, सामान्य धर्म और मोक्ष धर्म सब का प्रतिपादन बड़ी उत्तमता से किया गया है।

बहुत विद्वानों का यह भी मत है कि मनुस्मृति में भी समय २ पर बहुत उलट फेर हुआ है और इसका वर्तमान रूप प्राचीन रूप का रूपान्तर मात्र है। सम्भव है ऐसा हुआ हो क्योंकि धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विप्लवों में ग्रन्थों में परिवर्तन होना अनिवार्य है। इतना होने पर भी मनु धर्म्म शास्त्र संसार में अद्वितीय पुस्तक है। इसमें जो बात खटकती है वह शूद्रों के प्रति कठोर नियम हैं और ब्राह्मणों के लिए अनुचित पक्षपात है। यह बात समझ में नहीं आती कि जो सबको आत्म रूप से देखने वाले थे वह मनुष्यों में दास्य प्रथा को किस

तरह स्थान दे सकते थे और अयोग्य पुरुषों की पूजा की किस तरह अनुमति दे सकते थे।

सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का आधार होना चाहिए न्याय और न्याय की आधार शिला है समानता। इस त्रुटि के रहते हुए भी मनु धर्मशास्त्र परं हितकारी और आदरणीय है। इसका स्वाध्याय मनुष्य को उन्नत करने वाला है। परन्तु ग्रन्थ इतना विस्तृत है कि संशोधित स्मृति में भी १६३५ श्लोक हैं जो सर्वसाधारण के पढ़ने और खरीदने की शक्ति से बाहर हैं, इस लिए इसको संक्षेप में प्रकाशित किया गया है जिसमें ४१४ श्लोक आगए हैं। देश में और भी कई संक्षिप्त स्मृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु यह स्मृतिसार इतना उत्तम है कि इसमें कोई भी आवश्यक विषय नहीं छोड़ा गया है। इसके पढने से मनुष्य समस्त स्मृति के पढने का लाभ प्राप्त कर सकता है॥

॥ श्री ॥

मनुस्मृतिसार

प्रथमोऽध्यायः

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य ब्रह्मणेऽमिततेजसे ।
मनुप्रणीतान्विविधान् धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान्

अमित तेजवाले स्वयम्भू भगवान को नमस्कार करके मनुप्रणीत विविध शाश्वत धर्मों को कहता हूं ॥ १ ॥

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रतिपूज्य यथा न्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥२

महर्षि, एकाग्र चित्त बैठे मनुके पास पहुंचे और यथोचित पूजा करके यह वचन बोले ॥ २ ॥

भगवन् सर्ववर्णानां यथावत् अनुपूर्वशः ।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥३

भगवन्! आप हमें सारे वर्णों के और अन्तरालों के धर्म ठीक ठीक और अनुक्रम से बतलाने की कृपा कीजिये ॥३॥

जरायुजाण्डजानाञ्च तथा संस्वेदजोद्भिजाम्
भूतग्रामस्य सर्वस्य प्रभवं प्रलयं तथा ॥ ४ ॥

जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज तथा समस्त भूत समूह के उत्पत्ति और प्रलय को:- ॥ ४ ॥

आचारांश्चैव सर्वेषां कार्याकार्य विनिर्णयम् ।
यथा कामं यथा योगं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥५॥

सब के आचार को, कार्याकार्य के विनिर्णय को यथा योग्य आप कहने को समर्थ हैं ॥ ५ ॥

त्वमेकोह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्वार्थवित्प्रभो ॥

क्योंकि हे प्रभो ! आप अकेले इस सारे विधान (रीति-कानून) के कार्य (कर्त्तव्य भाग) का सच्चा तात्पर्य समझने वाले हैं जो (विधान) अचिंत्य अपरिमेय स्वयम्भु (अनादि परमात्मा का है) अर्थात् वेद है ॥ ६ ॥

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान् महर्षीन्श्रूयतामिति

इस प्रकार जब उन विशाल हृदय वालों ने उस अपरिमित शक्तिवाले (मनु) से पूछा तो वह बड़े आदर पूर्वक उन

सब महर्षियों को उत्तर देने लगे, सुनिये ॥ ७ ॥

आसीदिदं तमोभूतं अप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ८ ॥

यह (विश्व) अपना अस्तित्व रखता था, अन्धेरे के रूप में न प्रत्यक्ष, न कोई चिन्ह, न तर्क से जानने योग्य, न शब्द से जानने योग्य मानो गहरी नींद में सोया पड़ा था ॥ ८ ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रदुरासीत्तमोनुदः ॥ ९ ॥

तब भगवान् स्वयम्भू जिनकी (रचना) शक्ति कार्य्योन्मुख हुई है वह उस अन्धेरे को हटाता हुआ अव्यक्त हुआ भी इस महाभूत आदि को व्यक्त करता हुआ प्रकट हुआ ॥ ९ ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ १० ॥

वह जो इन्द्रियों से परले (आत्मा) का ग्राह्य सूक्ष्म अव्यक्त सनातन (सदा से है) सब भूतोंका अन्तर्यामी अचिन्त्य है वही स्वयं प्रकट हुआ ॥ १० ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ११

उस (भगवान्) ने अपने शरीर से भिन्न २ प्रकार के जीवों को रचने की इच्छा करते हुये, ध्यान से पहले जलों (पानी की तरह पतला द्रवावस्था में मादा) को रचा, और उनमें अपना बीज छोड़ा ॥ ११ ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

वह (बीज) सूर्य तुल्य चमक वाला एक सुनहरी (लाल भभकता हुआ) अंडा (गोला) होगया उस (अण्डे) में वह स्वयं ब्रह्मा (होकर) प्रकट हुआ, जो सारे लोकोंका पितामह है ॥ १२ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥१३

जल नार कहे जाते हैं, क्योंकि जल नर के पुत्र हैं। जिस लिये वह (जल) इस (परमात्मा) का पहला घर है इस लिये वह नारायण कहलाता है ॥ १३ ॥

यत्तद्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥

वह (पहला) कारण जो अव्यक्त (नित्य व्यक्त अव्यक्त स्वभाव वाला है) उसे रचा वह पुरुष लोकमें ब्रह्मा निकुरात है ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात् तदण्डमकरोद्द्विधा

उस अंडे में वह भगवान् पूरा वर्ष भर निवास करके आप ही अपने ध्यान से उस अंडे के दो टुकड़े करदिये ॥ १५ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्

उन दोनों टुकड़ों से उसने द्यौ और भूमि को और उनके मध्य में आकाश और आठों दिशायें और जल का नित्य स्थान बनाया ॥ १६ ॥

सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

पर उस (ब्रह्मा) ने आदि में सबके नाम और कर्म अलग २ तथा अलग २ मर्यादायें वेद के शब्दों से ही रचीं ॥१७

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिध्यर्थं ऋग्यजुःसाम लक्षणम् ॥

और उसने अग्नि वायू और सूर्य से ऋग्, यजु, साम स्वरूप तीन प्रकार का वेद यज्ञ की सिद्धि के लिये दोहा ॥ १८ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहं अर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ॥

अपने देह के दो भाग करके आधे से पुरुष हो गया और आधे से नारी उस नारी में से उस प्रभु ने विराट को उत्पन्न किया ॥ १६ ॥

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।
तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥

इस (संसार) में जिन भूतों का जैसा कर्म (पूर्वाचार्यों ने) बतलाया है वह तुम्हें वैसा बतलाऊंगा और जन्म में जो कर्म योग है (जिस कम से जन्म होता है) ॥ २० ॥

अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥

जो फूल के विना फल वाले होते हैं वह वनस्पति कहलाते हैं, और जो फूल और फल दोनों वाले हैं वह वृक्ष कहलाते हैं २१

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्म हेतुना ।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥

यह (उद्भिज) अपने पिछले जन्म के कर्म के फल से अनेक प्रकार के अन्धेरे से ढपे हुये पर भीतर छुपे ज्ञान

वाले और सुख दुःख से युक्त होते हैं ॥ २२ ॥

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥

जब वह देव जागता है तब यह जगत् चेष्टा करने लगता है जब शांतात्मा होकर सो जाता है तब सारा (विश्व) आँख मूंद लेता है (सो जाता है)।

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः ।
विधिवद् ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन्

और यह शास्त्र रच कर स्वयं उस (ब्रह्मा) ने आदि में मुझे ही विधि अनुसार सिखलाया और मैंने मरीचि आदि मुनियों को सिखलाया ॥ ९४ ॥

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥

यह भृगु तुम्हें यह सारा शास्त्र सुनाएगा, क्योंकि इस मुनि ने सारा अपने पूर्णरूप में मुझ से पढ़ लिया है ॥ ९५ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥

दिन रात जो मनुष्य और देवताओं के हैं इनका विभाग

सूर्य करता है, रात भूतों के सोने के लिये और दिन कार्मों को दौड़ धूप के लिये ॥ २६ ॥

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रति बुद्धयते।
प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥

उस दिन, रात के अन्त में सोया था जागता है और जागा हुआ व्यक्त अव्यक्त स्वभाव वाले मन को रचता है ॥२७॥

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया।
आकाशं जायते तस्मात् तस्य शब्दं गुणं विदुः

मन ब्रह्म की रचने की इच्छा से प्रेरा हुआ रचना को बदलता है उससे आकाश उत्पन्न होता है, उसका शब्द गुण जानते हैं ॥ २८ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥

रोगों से रहित मनोरथ जिसके सब पूरे होते हैं वे चार-सौ वर्ष की आयु वाले मनुष्य होते हैं सतयुग में त्रेतादि में इनकी आयु इससे पाद २ घटती जाती है ॥ २६ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥

सतयुग में मनुष्यों के और धर्म होते हैं और युग की घटती के अनुरूप त्रेता में और, द्वापर में और, और कलियुग में और होते हैं ॥ ३० ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥

सतयुग में प्रधान (धर्म) तप कहा जाता है, त्रेता में (देवताओं का) ज्ञान, द्वापर में यज्ञ ही कहते हैं, और कलियुग में अकेला दान ॥ ३१ ॥

ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् ।
वैश्यो द्वापरमित्याहुः शूद्रः कलियुगः स्मृतः

सत्युग को ब्राह्मण कहा है, त्रेता को क्षत्रिय, वैश्य को द्वापर, और शूद्र को कलियुग कहा है ॥ ३२ ॥

सर्वस्यास्यतु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक् कर्माण्यकल्पयत्

इस सारी सृष्टि की रक्षा के अर्थ उस महातेजस्वी ने मुख, भुजा, रान और पावों से उत्पन्न हुओं के कर्तव्य अलग २ नियत किये ॥ ३३ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

(वेदका) पढाना और पढना, यज्ञ करना और कराना (दान) देना और लेना ब्राह्मणों का नियत किया ॥ ३४ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत् ॥

प्रजा की रक्षा करना दान देना, यज्ञ करना, वेद का पढ़ना और विषयों में न फंसना, क्षत्रिय का बतलाया ॥ ३५ ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

पशुओं का पालन, दान, यज्ञ और (वेद का) पढना सौदागरी ब्याज और खेती वैश्य का बतलाया ॥ ३६ ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूसामनसूयया ॥ ३७ ॥

एक ही कर्म प्रभू (ब्रह्मा) ने शूद्र का बतलाया है, कि नर्मी से इन्हीं वर्णों की सेवा ॥ ३७ ॥

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥

जिसके मुख से देवता सदा हव्य और पितर कव्य खाते हैं, उससे अधिक और कौन भूत होसकता है ॥ ३८ ॥

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः

श्रुति और स्मृति में कहा आचार परम धर्म है, इसलिये आत्मवान् (अपने आत्मा का मान रखने वाले) द्विज को इस के पालन में सदा सावधान होना चाहिये ॥ ३६ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः ।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधतः ॥ १

धर्म, जो वेद के जानने वाले धर्मात्मा, सदा द्वेष से रहित पुरुषों से सेवन किया गया है और हृदय से अनुज्ञा दिया गया है उसे जानो ॥ १ ॥

अकामस्य क्रिया काचित् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किंचित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥

कामना से शून्य कभी कोई क्रिया इस लोक में नहीं

दीखती है क्योंकि मनुष्य जो २ करता है वह २ कामना की चेष्टा है ॥ २ ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः

जो द्विज हेतु शास्त्र के आश्रय से इन दोनों (धर्म के) मूलों का अपमान करे। उस नास्तिक को शिष्ट लोगों ने अलग कर देना चाहिये जो कि वेद निन्दक है ॥ ३ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥४

वेद और स्मृति में कहा गया, सदाचार से युक्त और अपने आत्मा को प्रिय यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण है।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥५

अर्थ और काम में न फंसे हुओं के लिये धर्म का ज्ञान विधान किया है धर्म के जिज्ञासुओं को परम प्रमाण श्रुति है॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ ६ ॥

सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के जो मध्य

में है उस देवताओं के रचे देश को ब्रह्मावर्त्त कहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥

उस देश में वर्णों का और अन्तरालों का जो आचार परम्परा क्रम से आया है (न कि अब का है) वह सदाचार धर्मात्माओं का आचार कहलाता है ॥ ७ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥ ८ ॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल, शूरसेनक, यह ब्रह्मर्षि देश हैं, जो ब्रह्मावर्त्त से आगे उसके साथ हैं ॥ ८ ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः

इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण के पास से पृथिवी पर के सभी मनुष्य अपना २ आचार सीखें ॥ ९ ॥

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ १०

पूर्व के समुद्र तक और पश्चिम के समुद्र तक इन दोनों पर्वतों के मध्य को विद्वान् आर्यावर्त्त जानें ॥ १० ॥

SHRI BHAGAT BHAKTI ASHRAM REWARI

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परः॥

काला हिरण जहां स्वभाव से विचरता है वह देश यज्ञ के योग्य जानना चाहिए इस से आगे म्लेच्छ देश है॥ ११

एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः

द्विजों को चाहिए, कि प्रयत्न से इन देशों का आश्रय लें और शूद्र जीविका से तंग हुआ जहां कहीं बसे॥ १२॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत॥

यह धर्म का मूल और इस विश्व की उत्पत्ति, तुम्हें संक्षेप से कह दई है अब वर्णों के धर्मों को जानो॥ १३॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥१४

स्वाध्याय से, व्रतों से, होमों से, त्रयी विद्या में निपुणता से, इष्टियों से, पुत्रों से, महायज्ञों से और यज्ञों से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है॥ १४॥

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥

दशवें वा बारहवें दिन इस का नाम कराए, अथवा अच्छे तिथि मुहूर्त वा गुणयुक्त नक्षत्र में॥ १५॥

मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥

ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक हो, क्षत्रिय का बल से युक्त, वैश्य का धन से युक्त, शूद्र का निन्दा वाला हो॥ १६॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥

ओंकार पूर्वक तीन नाश न होने वाली महाव्याहृतियें और तीन पादवाली सावित्री यह ब्रह्म का मुख जानना चाहिये॥ १७॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

जो इन तीनों का सावधानी से प्रतिदिन पाठ करता है, वह परब्रह्म को प्राप्त होता है, वायु की तरह विचरता और आकाश शरीरी होता है॥ १८॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते

एक अक्षर परब्रह्म है, प्राणायाम उत्तम तप है, सावित्री से उत्तम कुछ नहीं है, चुप से सच पढ कर है ॥ १९ ॥

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः ।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥२०

वेद में कहे सब होम यज्ञ कर्म नाशवान् हैं पर अक्षर अविनाशी ब्रह्म जानना चाहिए, जो कि प्रजा का पति है ॥ २०

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥

जप का कर्म विधियज्ञ से दशगुना उत्तम होता है, वही फिर सौगना होता है जब धीमी आवज से किया जाय, और हजार गुणा मन में करने से होता है ॥ २१ ॥

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्

चारों पाकयज्ञ, विधि यज्ञों के समेत भी सब मिलकर जप यज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर नहीं होते ॥ २२ ॥

जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥

ब्राह्मण केवल जप से ही सिद्धि पाता है इसमें संशय नहीं और कुछ करे चाहे न करे। क्योंकि जो सूर्य तुल्य है, वह सच्चा ब्राह्मण कहलाता है ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥

खींचने वाले विषयों में विचरते हुए इन्द्रियों के रोकने में विद्वान् यत्न करे, जैसे सारथि घोड़ों को ॥ २४ ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥

कान, त्वचा, आँखें, जीभ और पाँचवां नाक और गुदा, उपस्थ, हाथ और पैर और दशवीं वाणी कही है ॥ २५ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥

इनमें से क्रमवार कान आदि पांच को ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच को कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ २६ ॥

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ

ग्यारवां मन जानो, जो अपने गुण से दोनों शक्तियों वाला है, जिसके जीते जाने पर यह दोनों पांच २ के समूह जीते जाते हैं ॥ २७ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति

इन्द्रियों के लगाव से पुरुष निःसंदेह दोष को प्राप्त होता है। हां यही हैं, जिनको फिर वश में करके सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥२९॥

कामना कभी विषयों के उपभोग से शान्त नहीं होती है, घी से अग्नि की तरह अधिक ही बढ़ती है।

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ।

जो इन सब को पालेवे, और जो इन सब को त्याग

देवे, सब कामनाओं की प्राप्ति से उस का त्याग ही बढ़कर होता है ॥ ३० ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च

न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्

वेद, दान, यज्ञ, नियम और तप इन दोषों से भरी हुई वासना वाले कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा चदृष्ट्वा चभुक्त्वा घ्रात्वा चयो नरः

न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः

जो पुरुष सुन कर, छूकर, देख कर, खाकर वा सूंघकर न हर्ष करता है, न ग्लानि करता है, उसको जितेन्द्रिय जानो ॥ ३२ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥३३

परन्तु सारी इन्द्रियों में से यदि एक भी इन्द्रिय बह निकलता है, तो उससे इसकी समझ बह जाती है, जैसे चमड़े के पात्र में पानी ॥ ३३ ॥

वशेकृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।

सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥

इन्द्रियों के गण को बस में करके, तथा मनको बस में करके शरीर को विना पीड़ा दिऐ युक्ति से सारे कार्यों को साधे ॥ ३४ ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपँस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात्
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥

पहली सध्या में जप करता हुआ सूर्य के दर्शन होने तक खड़ा रहे, और पिछली में भलि भान्ति तारों के स्पष्ट दीखने तक बैठ कर जाप करे ॥ ३५ ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्

पहली सन्ध्या में खड़ा होकर जप करता हुआ रात्रि के पाप को दूर करता है, और पिछली में बैठा हुआ दिन के किये दोष को नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्
स शुद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः

जो पहली सन्ध्या में नहीं खड़ा होता है, और जो पिछली सन्ध्या को नहीं उपासता है, उसको शूद्र की तरह द्विजों के सारे कर्त्तव्य से अलग कर देना चाहिये ॥ ३७ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि।

वेद के उपसाधन में, और नैत्यक स्वाध्याय और होम के मन्त्रों में अनध्याय की रुकावट नहीं है ॥ ३८ ॥

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चाऽन्यायेन पृच्छतः
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥

बिना पूछे किसी को न कहे, और न ही अवधि से पूछते हुए को कहे, जानता हुआ भी बुद्धिमान् लोक में अनजान सा रहे ॥ ३९ ॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥४०

जो अधर्म से बतलाता है, और जो अधर्म से पूछता है, उन में से एक मरजाता है, वा विद्वेष को प्राप्त होता है ॥

धर्म्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥

जहां धर्म और अर्थ न हो, वा वैसी सेवा न हो, वहां विद्या नहीं देनी चाहिये, जैसे अच्छा बीज ऊपर में ॥ ४१ ॥

SRI BHAGAT BHARI REWARI

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्

जो बड़ों को नमस्कार करने के स्वभाव वाला है और प्रति दिन उनके पास उठने बैठने वाला है उसकी चार चीजें बढ़ती हैं आयु, विद्या, यश और बल ॥ ४२ ॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ठ्यम् क्षत्रियाणां तु वीर्यतः
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥

ब्राह्मणों का बड़प्पन ज्ञानसे होता है, क्षत्रियों का वीरता से, वैश्यों का अनाज और धनसे, जन्म से केवल शूद्रों का ॥ ४

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥

इससे कोई पूजनीय नहीं होता है, कि इसका शिर श्वेत होगया है जो युवा भी विद्वान् है, उसको देवता पूजनीय जानते हैं ॥ ४४ ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥

ब्राह्मण संमान से सदा इस तरह डरे, कि मानो विष है और अपमान को अमृत की तरह सदा चाहे ॥ ४५ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्यत्र श्रम करता है, वह जल्दी जीता ही शूद्रता को प्राप्त होता है, और उसके पीछे उसका वंश भी ॥ ४६ ॥

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ।

वेद के विधान से पहला जन्म माता से होता है, दूसरा मौञ्जी बन्धन से, तीसरा यज्ञ की दीक्षा से ॥ ४७ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ।

जहाँ गुरु पर दोष लगाया जाता है वो निंदा प्रवृत्त है, वहां कान ढाप लेने चाहियें, वा वहां से दूसरी जगह चले जाना चाहिये ॥ ४८ ॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

अपनी माता, बहिन वा कन्यां के साथ भी एकान्त में न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रिय समूह खींच लेता है ॥ ४९ ॥

यथाखनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥

जैसे कुदाल से खोदता हुआ पुरुष पानी को पालेता है, इसी प्रकार आज्ञाकारी अपने गुरु के अन्दर छिपी विद्या को पा लेता है ॥ ५० ॥

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥

आचाय ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की, माता पृथिवी की और अपना भाई अपनी ही मूर्ति है।

तषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ ५२

उन तीनों का आज्ञाकारी होना परम तप कहलाता है, उनकी अनुमति विना कोई और धर्म न करे ॥ ५२ ॥

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः॥
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥

यही तीनों लोक, यही तीनों आश्रम, यही तीनों वेद, यही तीनों अग्नियें कहे हैं ॥ ५२ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥१

अखण्डित ब्रह्मचर्य्य के साथ यथाक्रम तीनों वेदों को, वा दो वेदों को वा एक ही वेद को पढ़कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे ॥ १ ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः

जहाँ स्त्रियों का मान होता है, वहां देवता आनन्द मानते हैं, और जहाँ इनका मान नहीं होता है वहां सम्पूर्ण कर्म निष्फल जाते हैं ॥ २ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

जहां कुलीन स्त्रियें शोक में रहती हैं, वह कुल जल्दी नष्ट होता है, और जहां यह शोक नहीं करती हैं, वह सदा बढ़ता है ॥ ३ ॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥

अनादर पाई स्त्रियें जिन घरों को शाप देती हैं, वह जादु से नष्ट हुए की तरह बिल्कुल नष्ट होजाते हैं ॥ ४ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥५

इसलिये कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि पर्वों और त्योहारों में वस्त्र भूषण और भोज्य वस्तुओं से सदा इनका मान करें ॥ ५ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्

जिस कुल में स्त्री से भर्त्ता और भर्ता से स्त्री सदा प्रसन्न हैं, वहां कल्याण अटल है ॥ ६ ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ७

स्त्री की प्रसन्नता से सारा कुल प्रसन्न रहता है, उसके अप्रसन्न रहने से सारा कुल अप्रसन्न रहता है ॥ ७ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।

पढाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देव यज्ञ, बलि भूतयज्ञ, और अतिथियों का पूजन मनुष्य यज्ञ है ॥ ८ ॥

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥

जो इन पांच महायज्ञों को यथा शक्ति त्यागता नहीं है, वह सदा घर में रहता हुआ भी पापों से लिप्त नहीं होता है ॥ ९

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य को पहुंचती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उस से सब प्राणधारी होते हैं।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥

जैसे सब प्राणधारी वायु का सहारा लेकर जीते हैं, वैसे सब आश्रम गृहस्थ का सहारा लेकर जीते हैं ॥ ११ ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥

यथाविधि स्वाध्याय से ऋषियों को पूजे, होम से देवताओं को, श्राद्धों से पितरों को, अन्न से मनुष्यों को और

बलि देने से भूतों को ॥ १२ ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरोः

तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही

गुरु को विधि अनुसार गौ देकर जिस पुण्य फल को प्राप्त होता है उस पुण्य फल को भिक्षा देने से प्राप्त होता है ॥

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।

निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥

ब्रह्मणों के मुख जो विद्या और तप से पूर्ण हैं, वह अग्नियें हैं. उनमें जो कुछ होमा जाता है वह बड़ा कठिनाई और बड़े पाप से बचाता है ॥ १४ ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।

एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥

आसन भूमि, जल और चौथी मीठी वाणी, ये सत्पुरुषों के घरों से कभी दूर नहीं होती ॥ १५ ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।

तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम्

जो मन्द बुद्धि गृहस्थी दूसरे के अन्न पर निर्वाह करते हैं, वह मरकर उस से अन्नादि देने वालों के पशु बनते हैं ॥ १६

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ॥

वह स्वयं न खाए, जो अतिथि को न खिलाये अतिथि का पूजन, धन, दीर्घ जीवन और स्वर्ग का देने वाला है ॥ १७

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः
अतिथिभ्योऽग्रएवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १८

नयी ब्याही स्त्रियों, छोटी कन्याओं, रोगी जन और गर्भवती स्त्रियों को बिना विचारे अतिथियों से पहले भोजन दे देवे ॥ १८ ॥

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥

वह केवल पाप खाता है जो अपने निमित्त पकाता है, क्योंकि जो यज्ञ से बचा भोजन है, यह श्रेष्ठ पुरुषों का अन्न कहलाता है ॥ १६ ॥

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥

धर्म का जानने वाला दैवकर्म में ब्राह्मण की परीक्षा न करे, परन्तु पितृकर्म जब करने लगे, तो सावधानता से परीक्षा करे ॥ २० ॥

इति तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १

सुख चाहने वाला पूरे सन्तोष का आश्रय लेकर संयमी रहे, क्योंकि सुख का मूल सन्तोष है, और दुःख का मूल असन्तोष है ॥ १ ॥

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा

दिन में मल मूत्र का त्याग उत्तराभिमुख होकर करे, रात में दक्षिणाभिमुख होकर, और दोनों सन्ध्याओं में दिन की तरह करे ॥ २ ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ ३

छाया में वा अन्धेरे में चाहे रात वा दिन हो, जिधर इच्छा हो मुख करे, तथा प्राणों की बाधा के भयों में यथेच्छ मुख करे ॥ ३ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ।

अग्नि को मुंह से न फूंके, नग्न स्त्री को न देखे, अपवित्र वस्तु को अग्नि में न डाले, और न इस में पाओं को तपाए ॥ ४

नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत्
न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥

सन्ध्या समय में न खाए, न चले, न सोवे, न भूमि को खुरचे, न आप माला उतारे ॥ ५ ॥

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा

जलों में मल, मूत्र, थूक, अपवित्र कपड़ा वा और कोई लहू और विषैली वस्तु न डाले ॥ ६ ॥

नैकः सुप्याच्छून्यगेहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चाऽवृतः ॥

उजाड़ घर में अकेला न सोवे, अपने से बड़े को न जगावे, रजस्वला के साथ बात चीत न करे, यज्ञ में न जाए, जब कि वह चुना न गया हो ॥ ७ ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत स्वार्थमेको न चिन्तयेत्
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्

अकेला स्वादिष्ट पदार्थ न खाए, अकेला अपने काम की

चिन्ता न करे, अकेला मार्ग न चले और बहुत सोये हुयों में एकेला न जगे ॥ ८ ॥

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम्
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥

उन ग्रामों में न रहे, जहां धर्म का पालन नहीं होता हो, जहाँ बहुत बीमारी हों वहाँ न रहे, अकेला यात्रा में न पड़े, न पर्वत में चिरकाल रहे ॥ ९ ॥

न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत्
नोत्संगे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली

वृथा कोई काम न करे, अञ्जलि से पानी न पीए, गोद में रखकर भक्ष्य न खाए, न कभी कुतूहली हो ॥ १० ॥

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत्

न नाचे, न गावे, न बाजे बजावे, न भुजा ठोंके, न उंगलियों के कड़ाके निकाले लहर में आया हुआ बोलियां न बोले ॥ ११ ॥

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥

पांव धोकर भोजन करे, परन्तु गीले पाओं न सोवे, पाओं को धोकर भोजनकरता हुवा दीर्घ आयु को प्राप्त होता है ॥१२॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः
नस्पृशच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नानार्थाद्बिना ततः ॥

एकवार दोनों हाथों से अपना शिर न खुजावे, और झूठे हाथों इसे छुए नहीं, और न इसके विना स्नान करे ॥ १३ ॥

ब्राह्म मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥

ब्राह्म मुहूर्त्त में जागे, धर्म और अर्थ का विचार करे उन अर्थों से होने वाले शरीर के क्लेशों का और वेद के तत्व अर्थ को भी विचारे ॥ १४ ॥

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम्

उठ कर आवश्यक मल मूत्र का त्याग करे फिर स्नानादि करके एकाग्र हो पहली सन्ध्या में गायत्री जप करे और अपने समय पर दूसरी सन्ध्या में जप करे ॥ १५ ॥

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१६

सच बोले प्रिय बोले अप्रिय सच न बोले, और प्रिय झूठ न बोले, यह सनातन धर्म है ॥ १६ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥

शुभ को शुभ कहे, वा शुभ ही कहे। सूखा वैर और झगड़ा किसी के साथ न करे ॥ १७ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

आचार से दीर्घ आयु को पाता है, आचार से भली सन्तान को, आचार से अक्षय धन पाता है, आचार कुलक्षण को नष्ट कर देता है ॥ १८ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

दुराचारी पुरुष लोक में निन्दित, सदा दुःख भागी, रोगी और थोड़ी आयु वाला होता है ॥ १९ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥२०॥

जो पुरुष सदाचारी है श्रद्धा में भरा हुआ है; असूया

रहित है, वह सौ वर्ष जीता है; चाहे सारे ही शुभ लक्षणों से शून्य भी हो ॥ २०॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशंतु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥२१॥

जो २ कर्म पराधीन हैं, उस २ को प्रयत्न से छोड़े, और जो २ अपने आधीन हैं उन २ को यत्न से सेवन करे ॥ २१ ॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयो ॥२२

क्योंकि पराधीन सब दुःख हैं, और अपने आधीन सब सुख हैं, यह संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जाने ॥ २२ ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥२३

जिस कर्म के करने से इसके अन्तरात्मा को सन्तोष हो उसे प्रयत्न से करे, और उलटे को छोड़ देवे ॥ २३ ॥

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरापवमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥२४

अधर्म किया हुआ इस लोक में गौ की तरह जल्दी अपना फल नहीं देता, परन्तु धीरे २ बढ़ता हुआ करने वाले की जड़ें

को काट देता है ॥ २४ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु ।
नत्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥

यदि अपने में नहीं तो पुत्रों में; यदि पुत्रों में भी नहीं, तो पोतों में फलता है। किया हुआ अधर्म करने वाले का कभी निष्फल नहीं होता ॥ २५ ॥

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

अधर्म से पहले बढ़ता है, फिर भद्र देखता है, फिर शत्रुओं को जीतता है, अन्ततः जड़ समेत नष्ट होजाता है ॥ २६

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

धर्मात्माओं के उस मार्ग से चले, जिससे इस के पितर चले हैं और जिससे इसके पितामह चले हैं, उससे चलता हुआ हानि नहीं उठाता है ॥ २७ ॥

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ २८

जैसे पत्थर की नौका से पानीमें तैरता हुआ नीचे डूबता

है, वैसे मूर्ख देने वाला और लेने वाला दोनों नीचे डूबते हैं ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चन सर्पिषाम् ॥

जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल सोना, घी इन सभी दानों में वेद का दान बढ़कर है ॥ २९ ॥

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति।
तत्तत्तेनै भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजित : ॥३०

जिस २ भावना से जो२ दान देता है, उसी उसी भावना से वह आदर मान के साथ उस २ को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोक सहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥३१॥

किसी भी जीव को पीड़ा न देता हुआ, परलोक की सहायता के लिये धीरे २ धर्म का संचय करे जैसे दीमक टीला बनाती है ॥ ३१ ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्र दारा न ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

क्योंकि परलोक में सहायता के लिये न माता पिता, न पुत्र स्त्री, खड़े होते हैं, अकेला धर्म खड़ा होता है ॥ ३२ ॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

अकेला जीव उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है, अकेला पुण्य को और अकेला पाप को भोगता है ॥ ३३ ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठ लोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

मरे शरीर को लकड़ी और ढेले के तुल्य भूमि पर फैंक कर बान्धव मुख मोड़ कर चले जाते हैं, धर्म उसके पीछे जाता है ॥ ३४ ॥

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ।
यथा चोपचरेदेवं तथात्मानं निवेदयेत् ॥३५

जैसे इसका स्वरूप हो, और जिस प्रकार से वह इसकी सेवा कर सकता है, इस प्रकार वह आप अपने आप को समर्पण करे ॥ ३५ ॥

वच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ३६

सब व्यवहार वाणी से सम्बन्ध रखते हैं, वाणी उनका

मूल है. वाणी से उत्पन्न हुए हैं सो जो उस वाणी को चुराता है। वह मनुष्य हर एक वस्तु को चुराने वाला है ॥ ३६ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् ।
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥

स्नातक के इन यथोक्त धर्मों को सुनकर ऋषि लोग अग्नि से उत्पन्न हुए महात्मा भृगु से यह बोले ॥ १ ॥

एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥२॥

हे प्रभो ! मृत्यु उन ब्राह्मणों को कैसे दबाने को समर्थ होता है, जो इस प्रकार तुझ से कहे धर्म का अनुष्ठान करते हैं और वेद शास्त्र को समझते हैं ॥ २ ॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥

तब वह मनु का पुत्र धर्मात्मा भृगु उन महर्षियों से बोला, सुनिये, जिस दोष से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहती है ॥ ३॥

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति

वेदों के अनभ्यास से, आचार के छोड़ देने से आलस्य से और अन्न के दोष से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहता है ॥४॥

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥

पशु और पक्षी जो अच्छे कहे हैं, वह यज्ञ के लिये वा अवश्य पालने योग्यों के पालन के लिए ब्राह्मणों से मारे जा सकते हैं ॥ ५ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ।
यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥६॥

मनुष्य मांस को खा सकता है, जब कि प्रोक्षित है, वा जब ब्राह्मणों की इच्छा हो, वा जिसको विधि के अनुसार आज्ञा मिली है वा जब प्राण खतरे में हों ॥ ६ ॥

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥

प्रजापति ने इस सब को प्राण का अन्न बनाया है, स्थावर और जङ्गम सब प्राण का भोजन है ॥ ७ ॥

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः॥

चलने वालों के न चलने वाले अन्न हैं, दाढ़ वालों के न दाढ़वाले, हाथ वालों के न हाथ वाले और शूरों के डरपोक अन्न हैं ॥ ८ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥

यथा विधि आज्ञा दिया जो पुरुष मांस नहीं खाता है, वह मरकर इक्कीस जन्म पशु बनता है।

यावन्ति पशु रोमाणि तावत्कृत्वोह मारणम्
वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि

जितने मारे जाने वाले पशु के रोम होते हैं, उतनी बार वृथा पशु मारनेवाला मरकर जन्म २ में मारा जाता है ॥ १० ॥

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतिः पुनः

ओषधियें, वृक्ष, पशु पक्षी और दूसरे जन्तु यज्ञ के लिये नाश को प्राप्त हुए फिर ऊंचे जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

या वेद विहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥

जो वेद विहित हिंसा इस चर अचर में नियत की गई है, उसे अहिंसा ही जाने, क्योंकि वेद से ही धर्म प्रकाशित हुआ है ॥ १२ ॥

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

जो प्राणियों को उनके बाँधने और मारने के क्लेशों को नहीं देना चाहता है, वह सब का हित चाहने वाला अत्यन्त सुख पाता है ॥ १३ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम्

एक वह पुरुष जो वर्ष २ पीछे सौ वर्ष तक अश्वमेध यज्ञ करे, और दूसरा वह जो मांस कभी न खाय, उन दोनों का पुण्यफल समान होता है ॥ १४ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ।

सारी शुद्धियों में से धन की शुद्धि सब से उत्तम कहा

गई है, जो धन में शुद्ध है वह शुद्ध है, मिट्टी और जलसे शुद्ध शुद्ध नहीं है ॥ १५ ॥

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥

विद्वान् क्षमा से शुद्ध होते हैं निषिद्ध कार्य करने वाले दान से, गुप्त पापों वाले जप से, वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष तप से शुद्ध होते हैं ॥ १६ ॥

मृत्तोयैः शुद्धयते शोध्यं नदी वेगेन शुद्धयति
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥

शोधने योग्य वस्तु मट्टी जल से शुद्ध होती है नदी वेग से शुद्ध होती है, जिस के मन में दोष उत्पन्न हुआ है वह स्त्री ऋतु से और ब्राह्मण संन्यास से शुद्ध होता है ॥ १७ ॥

अजाश्वं मुखतो मेध्यं गावो मेध्याश्च पृष्ठतः
ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्याश्च सर्वतः

बकरी और अश्व मुख से पवित्र होते हैं, गौ का पृष्ठ भाग पवित्र होता है, ब्राह्मणों के चरण पवित्र होते हैं और स्त्रियाँ सर्वाङ्ग पवित्र हैं ॥ १८ ॥

गौरमेध्या मुखे प्रोक्ता अजा मेध्या ततः स्मृता
गोः पुरीषं च मूत्रं च मेध्यमित्यब्रवीन्मनुः ॥

गौ का मुख अपवित्र होता है और अजाका मुख पवित्र होता है। गौ का मूत्र और पुरीष पवित्र होता है यह मनुजी कहते हैं ॥ १६ ॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपिसन्

सोकर छींक कर, खाकर, थूक कर, झूठ बोल कर, पानी पीकर और पढ़ने वाला आचमन करे चाहे पहले शुद्ध भी हो ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्

बालकपन में पिता के, यौवन में पति के, पति के मरने पर पुत्रों के आधीन रहे, स्त्री कभी स्वतंत्र न होवे ॥ २१ ॥

पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्
आयुष्यं हरते भर्तुः नरकं चैव गच्छति ॥

जो स्त्री पति के जीवित रहने पर उपवास करती हैं वह उपवास करके पति की आयु का हरण करती हैं, और स्वयं नरक को प्राप्त होती हैं ॥ २२ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुल संततिम् ॥

अनेक ब्राह्मण जो युवा होकर भी ब्रह्मचारी रहे हैं वह अपने कुल को जारी रखने के बिना भी स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ २३ ॥

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

पति के मरने पर जो भली स्त्री ब्रह्मचर्य में स्थिर रहती है, वह बिना पुत्र भी स्वर्ग को जाती है जैसे वह ब्रह्मचारी ॥२४

इति पंचमोऽध्याय।

अथ षष्ठोऽध्याय।

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भजन्ति ब्रह्मवादिनः॥

जो सब भूतों को अभय देकर घर से परिव्राजक होकर निकलता है, उस ब्रह्मवादी के तेजोमय लोक होते हैं ॥ १ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥२॥

इच्छा न मरने की रक्खे न जीने की, काल की ही प्रतीक्षा करे जैसे भृत्य मजदूरी की ॥ २ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ३

दृष्टि से पवित्र हुआ पाव रक्खे वस्त्र से पवित्र हुआ जलपिये, सचाई से पवित्र हुई वाणी बोले, मन से पवित्र हुआ आचरण करे ॥ ३ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ४

सख्त शब्दों को सहारे, किसी का अपमान न करे, इस देह के लिए किसी से वैर न करे ॥ ४ ॥

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिकृध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥

क्रोध करते हुए पर प्रतिक्रोध न करे, किसी ने झिड़क दिया है, तो उस के लिये कुशल कहे सात द्वारों में बटी हुई वाणी से झूठ न बोले ॥ ५ ॥

विधूमे सन्नमुसले, व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥

जब धूंआ दूर हो चुका हो मूसल बंद हों, अग्नि ठंडी हो गई हों, घर के लोग खा चुके हों, थालियें उठा दी गई हों, ऐसे

समय पर यति सदा भिक्षा करे ॥ ६ ॥

इन्द्रियाणां निरोधेन, रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥७

क्योंकि इन्द्रियों के रोकने से, राग द्वेष के नाश से, और प्राणियों की अहिंसा से मोक्ष के योग्य होता है॥ ७ ॥

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ८

जिस तिस आश्रम में रहता हुआ दूषित हुआ भी सब भूतों में समदृष्टि होकर धर्म का आचरण करे, चिह्न धर्म का कारण नहीं होता है ॥ ८ ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृता
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥९॥

व्याहृतियों और ओंकार से युक्त प्राणायाम तीन भी विधि अनुसार किए हुए ब्राह्मण का परम तप जानना चाहिए।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्

धौंकने से जैसे धातों के मैल जल जाते हैं, इस तरह प्राण के रोकने से इन्द्रियों के मैल जाते हैं।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ११

परमात्मा के यथार्थ दर्शन से युक्त पुरुष कर्मों में नहीं बंधता है, किन्तु साक्षात् दर्शन से हीन पुरुष संसार को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अस्थिस्थूणंस्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥

हड्डियें जिसमें खंभे हैं, नाडियों से युक्त है, मांस और लोहू गच्च के स्थान हैं, जो चमड़े से मंढा हुआ है, मूत्र और विष्टा से भरा हुआ है, अतएव दुर्गंधित है ॥ १२ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥

बुढ़ापे और शोक से युक्त है, रोगों का घर है, पीड़ा से युक्त है धूलवाला है, और विनश्वर है, ऐसे पांच भूतों से बने इस घरको त्यागे ॥ १३ ॥

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ।
यथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥

वृक्ष जैसे नदी के किनारे को वा पक्षी जैसे वृक्ष को

छोड़ता है इस देह को छोड़ता हुआ दुःख रूपी मगर से छूटता है ॥ १४ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्

जैसे सब नदी नद समुद्र में आराम का स्थान पाते हैं, वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ में आराम का स्थान पाते हैं ॥ १५

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धीरज, क्षमा, दम, चोरी त्याग, पवित्रता इन्द्रियों का रोकना, धी, विद्या, सचाई क्रोध से बचना, यह दश प्रकार का धर्म का स्वरूप है ॥ १६ ॥

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्

जो ब्राह्मण धर्म के इन दश लक्षणों को पढ़ते हैं, और पढ़ने के पीछे इन पर चलते हैं, वह परमगति को प्राप्त होते हैं।

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ।
वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥

सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करदे परन्तु वेद का त्याग न

करे। क्योंकि त्याग से शूद्रत्व को प्राप्त होता है अतः वेदों का त्याग न करना चाहिये ॥ १८ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः !

अथ सप्तमोऽध्यायः

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ १ ॥

राजा बाल भी हो, तो भी यह मानकर कि मनुष्य है, उसका अपमान न करे क्योंकि मनुष्य के रूप से उसके शरीर में भारी देवता स्थित हैं ॥ १ ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥

जिसके प्रसाद में बड़ी लक्ष्मी बसती है, पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु बसता है क्योंकि वह सब के तेज से बना है ॥ २ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥

उसके भय से सब स्थावर जंगम भूत भोग के लिये समर्थ होते हैं और अपने धर्म से नहीं हिलते हैं।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥

दण्ड सारी प्रजाओं पर शासन करता है, दण्ड रक्षा करता है, दण्ड सोए हुओं में जागता है, दण्ड को बुद्धिमान् धर्म जानते हैं, ॥ ४ ॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥

ठीक २ विचार करके धारण किया दण्ड सारी प्रजाओं को प्रसन्न करता है, विना सोचे चलाया हुआ सब ओर से नाश करता है ॥ ५ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति

जहां काला, लाल नेत्रों वाला दण्ड पापियों को ताड़ता हुआ विचरता है, वहां प्रजाएं व्याकुल नहीं होतीं, यदि चलाने वाला ठीक देखता है ॥ ६ ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥

अपने २ पद के अनुसार अपने २ धर्म में लगे हुए सारे वर्णों और आश्रमों का राजा रक्षक के तौर पर रचा गया है ॥७

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ।
सुदाः पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥

विनय के न होने से वेन नष्ट हुआ है, तथा राजा नहुष, राजा पिजवन का पुत्र सुदा सुमुख और निमि ॥ ८ ॥

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥

पृथु और मनु विनय से राज्य को प्राप्त हुए हैं, कुबेर धन के ऐश्वर्य को और गाधि का पुत्र विश्वामित्र ब्राह्मणपने को प्राप्त हुवा है ॥ ६ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥

व्यसन और मृत्यु में से व्यसन अधिक हानि कारक है, व्यसनी नीचे २ जाता है, और बिना व्यसन मरा स्वर्ग को जाता है ॥ १० ॥

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ११

कोट पर खड़ा एक धनुर्धारी सौ के साथ युद्ध कर सकता है, और सौ योधा दस हज़ार के साथ। इसलिये दुर्ग बनाया जाता है ॥ ११ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः

वह राजे, जो संग्राम में परस्पर एक दूसरे को मारना चाहते हुए पराङ्मुख न होकर पूरी शक्ति के साथ लड़ते हैं, वह स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम्

स्थल पर चढ़े को न मारे, न नपुंसक को, न जिसने हाथ जोड़ दिये हैं न जिसके बाल बिखर गए हैं, न जो बैठ गया है, न उसको जो 'मैं तेरा हूं' कह रहा है ॥ १३ ॥

नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ।
गूहेत्कूर्म इवांगानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥१४॥

जिसके छिद्र को शत्रु न जाने, पर आप शत्रु के छिद्र को जाने, कछुए की तरह अंगों को ढांपे रक्खे, और अपने छिद्र का बचाव करे ॥ १४ ॥

बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥

बगले की तरह अपने प्रयोजनों में ध्यान रक्खे, शेर की तरह पराक्रम दिखलाए, भेड़िये की तरह झपट लेजाए और शशे की तरह निकल जाए ॥ १५ ॥

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥

जैसे किसान घास को निकाल फैंकता है और अनाज को रख लेता है वैसे ही राजा राष्ट्र की रक्षा करे, और विरोधियों को मारे ॥ १६ ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुंक्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः

जिसके मन्त्र को दूसरे लोग मिल करके नहीं जान पाते, वह राजा सारी पृथिवी को भोगता है, चाहे कोश से हीन भी हो ॥ १७ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः

जब राजा शत्रु को सर्वथा बलवत्तर समझे, तब सेना

को दो भाग में करके अपना कार्य साधे।

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥ १६

आपदा के दूर करने के लिए धन की रक्षा करे, धन से भी स्त्रियों की रक्षा करे, और अपने आपकी सदा स्त्रियों से भी और धन से भी रक्षा करे॥ १९॥

इति सप्तमोऽध्याय

अथाष्टमोऽध्यायः

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
मंत्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्॥

व्यवहारों (मुकद्दमों) को देखना चाहता हुआ राजा विनीत होकर ब्राह्मणों और मंत्र के जानने वाले मंत्रियों के साथ सभा में प्रवेश करे॥ १॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने॥

जब (काम की अधिकता वा रोग से) राजा स्वयं कार्यों का देखना न कर सके, तब विद्वान् ब्राह्मण को कार्यों के

देखने में लगाए ॥ २ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥

या तो सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिये, या ठीक २ कहना चाहिये, मनुष्य न कहता हुआ व उलटा कहता हुआ दोनों तरह से पापी होता है ॥ ३ ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानाँ हतास्तत्र सभासदः ॥ ४

क्योंकि जहाँ धर्म अधर्म से और सत्य झूठ से मारा जाता है और (सभासद) देखते रहते हैं, वहां सभासद मरे हुए हैं ॥ ४ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत्

धर्म मारा हुआ मार देता है, धर्म रक्षा किया हुआ रक्षा करता है, इसलिए धर्म को नहीं मारना चाहिए, न हो, कि मारा हुआ धर्म हमें मार दे ॥ ५ ॥

वृषोहि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥

भगवान् धर्म वृष है। उसका जो लोप करता है, उसको वृषल (शूद्र) कहते हैं, इसलिये धर्म का लोप न करे ॥ ६ ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥

धर्म ही एक मित्र है, जो मरने पर भी साथ जाता है और सब कुछ शरीर के साथ नाश को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥

(अन्याय करने में फल भागी बतलाते हैं) पाद (चौथाई) अधर्म करने वाले को, चौथाई साक्षियों को चौथाई सब सभासदों को और चौथाई राजा को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥

पर जहाँ (ठीक न्याय होने से) निन्दा के योग्य अर्थि वा प्रत्यर्थि निन्दा जाता है, वहां राजा निष्पाप होता है, सभासद सब छूट जाते हैं, पाप अपने करने वाले को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पंके गौरिव पश्यतः ॥

जिस राजा के शूद्र धर्म निर्णय करता है, उसका वह राष्ट्र उस के देखते हुए कीचड़ में गौ की तरह फंसता है ॥१०

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥११

आकृति, इशारे, गति (पाओं आदि का फिसलना आदि) चेष्टा, भाषण-और नेत्र तथा मुख के विकारों से अन्तर्गत मन जाना जाता है ॥ १ ॥

ब्राह्मणस्तु निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत्
तेन दत्तं तु भुंजीत स्तेनः स्यादनिवेदयन् ।

ब्राह्मण को जो धन प्राप्त हो शीघ्र जाकर राजा से निवेदन करदे राजा से दिये हुए धन को अपने काम में लावे। राजा को विना निवेदन किये काम में लाने से चोर कहलाता है ॥ १२ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोपि मानवाः
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः

अपने (जाति देश, कुल) के कर्मों को करते हुए मनुष्य चाहे दूर (देशान्तर) में भी हों तो भी (अपने देश जाति, और कुल के) लोगों को प्यारे होते हैं, जो अपने २ कर्मों में स्थिर हैं ॥ १६ ॥

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥

स्त्रियों की साक्षी स्त्रियें हों, द्विजों के अपने जैसे द्विज, शूद्रों के श्रेष्ठ शूद्र हों और अंत्यजों के श्रेष्ठ अन्त्यज हों ॥ १४॥

नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्
साक्षि धर्मे विशेषेण तस्मात्सत्यं विशिष्यते

सत्य से परे कोई धर्म नहीं और झूठ से अधिक कोई पाप नहीं। यह बात साक्षि के धर्मों में विशेष कर है अतः सत्य ही सब से बड़ा है ॥ १५ ॥

एकमेवाद्वितीयं तु प्रब्रुवन्नावबुध्यते।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।

एक ही अद्वितीय ब्रह्म है जोकि साक्षी को कहते हुए भी नहीं जाना जाता। नदी से आर पार करने वाली नउका की भाँति सत्य स्वर्ग की सोपान है।

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः

साक्षी सत्य से पवित्र होता है, धर्म सत्य से बढ़ता है, इसलिये हर एक वर्ण के विषय में साक्षियों को सत्य ही बोलना

चाहिये ॥ १७ ॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्

आत्मा ही आत्मा का साक्षी है, तथा आत्मा ही आत्मा की शरण (रक्षक) है, सो तू मनुष्यों के उत्तम साक्षी अपने आत्मा का (झूठ बोल कर) अपमान न कर ॥ १८ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥

पाप करने वाले समझते हैं, कि हमें कोई नहीं देखता, परन्तु उनको देवता देखते हैं, और अपने अन्दर का पुरुष देखता है ॥ १९ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्री बालघातिनः
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥

ब्रह्महत्या करने वाले के वा स्त्री वा बालक के घाती के, तथा मित्रद्रोही वा कृतघ्न के जो लोक कहे हैं, वह २ झूठ बोलने वाले को हों ॥ २० ॥

जन्म प्रभृति यत्किंचित् पुण्यं भद्र त्वया कृतम्
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ।

जन्म से लेकर हे भद्र! जो २ तूने पुण्य किया है वह तेरा सारा कुत्तों को प्राप्त हो (व्यर्थ जाए) यदि तू अन्यथा कहे ॥ २१ ॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः

'मैं अकेला हूं' हे भले! तू जो ऐसा अपने आपको समझता है ऐसा मत समझ क्योंकि पाप पुण्यों का देखने वाला यह मुनि (चुपचाप परमात्मा) सदा तेरे हृदय में स्थित है ॥ २२ ॥

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून् गमः

वैवस्वत यम देवता जो यह तेरे हृदयमें स्थित है, उसके साथ यदि तेरा (झूठ बोलने से) विवाद नहीं है, तो मत गंगाको जा मत कुरुक्षेत्र को जा ॥ २३ ॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥२४

पशु के विषय में झूठ बोलने से पांच मित्र के बध का, गौ के विषय में दश का, अश्व विषय में सौ और पुरुष विषय में सहस्र मित्रों के बध का पाप लगता है ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थं नरो बुधः।
वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति॥

बुद्धिमान् पुरुष बहुत छोटे भी काम में झूठी शपथें न करें. क्योंकि झूठी शपथ करने वाला लोक परलोक में (निन्दा और नरक की प्राप्ति से) नाश को प्राप्त होता है॥ २६॥

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्॥

स्त्रियों के विषय में, विवाहों में, गौ के चारे में, इन्धन में, और ब्राह्मण की रक्षा में शपथ में पातक नहीं है॥ २६॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत्
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्

सीमा के जानने में सदा लोक में लोगों की भूल होती देखकर और भी हद्द के गुप्त चिन्ह बनाए॥ २७॥

येन केन चिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्॥

अन्त्यज जिस किसी अंग से द्विजाति पर प्रहार करे, वही २ उसका काटना चाहिये यह मनु की आज्ञा है॥ २८॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ।
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥

पापियों के निग्रह और भलों के संग्रह से राजे सदा पवित्र होते हैं, जैसे यज्ञों से ब्राह्मण ॥ २६ ॥

पुरुषाणां कुलीनानाँ नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥

कुलीन पुरुषों विशेषतः स्त्रियों और मुख्य रत्नों (हीरे आदि) के चुराने में वध के योग्य होता है ॥ ३० ॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३१

जिस २ अंग से चोर किसी प्रकार भी मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है, उसके उसी अंग को (वैसे पाप के हटाने के लिये) राजा कटवादे ॥ ३१ ॥

साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥

साहस में प्रवृत्त पुरुष को जो राजा सहारता है वह जल्दी नाश को प्राप्त होता है और (तंग आई प्रजा से) द्वेष को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

SHRI BHAGWAT BHAKTI ... REWARI

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥

[अपने बचाव के लिये तो कहीं भी दोष नहीं होता] गुरु, बाल, वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण कोई भी हो सब आततायी [प्राणों का शत्रु] बन कर आवे, तो उसे बिना विचारे मार डाले ॥ ३३ ॥

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणि धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥ ३४

अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र लेकर मारने वाला, धन का हरण करने वाला, भूमि चुराने वाला और स्त्री का हरण करने वाला यह छह आततायी कहलाते हैं ३४ ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति

चाहे लोगों के सामने हो वा एकान्त में पर आततायी के मारने वाले को कोई दोष नहीं होता वहाँ क्रोध क्रोध का मुकाबिला करता है ॥ ३५ ॥

भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।
तांश्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते

जो स्त्री अपने पिता भाई आदि के धन बल आदि को या अपने गुण [सौन्दर्यादि] के दर्प से पति को उल्लांघे [पति की परवाह न करके पर पुरुष से फंसे] उसको बहुत जनों से भरे स्थान में राजा कुत्तों से नोचवाये ॥ ३६ ॥

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि नात्र दह्येत पापकृत्

और उस पापी पुरुष को राजा तपे हुए लोहे के पलंग पर [बान्धकर] जलवाए इस पर लकड़ियां डाले, वहाँ वह पापकारी दग्ध हो ॥ ३७ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्

जिस पुर में चोर नहीं, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वाणी वाला, न साहसी, न कठोर दण्ड मारपीट वाला, वह राजा इन्द्रलोक (स्वर्ग) का भागी है ॥ ३८ ॥

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान् नृपो धर्मं चिकीर्षन् हितमात्मनः

आश्रमों के कर्त्तव्यों के विषय में विवाद करते द्विजों को राजा अपना भला चाहता हुआ धर्म में अपने आप कुछ न कहे ॥ ३९ ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ॥

व्यवहार की सब वस्तुओं का इन बातों को ठीक २ विचार कर राजा क्रय विक्रय कराए, कि कहां से आई है कहां जाएगी कब तक पड़ी रही हैं॥ ४०॥

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्॥

तोल और मांप सब ठीक चिह्नों वाले हों और छः छः महीने पर उनको फिर परखे॥ ४१॥

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्

व्यापार, व्याज, खेती और पशुओं की रक्षा वैश्य से करवाए और शूद्र से द्विजादियों की दासता करवाए॥ ४२॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा

शूद्र चाहे खरीदा हुआ हो, या विना खरीदा हुआ हो उससे दास कर्म करवावे, क्योंकि ब्रह्माने उसको ब्राह्मण के दास कर्म के लिये ही रचा है॥ ४३॥

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥

अपने स्वामी से आजाद किया भी शूद्र दासत्व से नहीं छूट सक्ता है, क्योंकि वह स्वाभाविक है, कौन इससे इस कर्म को हटा सकता है ॥ ४४ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥

भार्या पुत्र और दास यह तीनों हीन धन वाले कहे हैं वे जो पाते हैं, वह धन उसका होता है जिसके वह दास हैं ॥ ४५ ॥

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत्
न हि तस्यास्ति किंचित्स्वंभर्तृहार्यधनो हि सः

ब्राह्मण अपने दास शूद्र से निशंक धन लेलेवे, क्योंकि उसका (दासका) कुछ अपना नहीं है, स्वामी उसका धन ले सक्ता है ॥ ४६ ॥

इति अष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्मे वर्त्मनि तिष्ठतोः।
संयोगे विप्रयोगेच धर्मान्वद्यामि शाश्वतान्

(क्रम प्राप्त स्त्री पुरुष धर्म का आरम्भ करते हैं) धर्म-युक्त मार्ग में ठहरे हुए स्त्री और पुरुष के संयोग और वियोग में जो जो सनातन धर्म हैं वह कहूंगा ॥ १ ॥

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैःस्वैर्दिवानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे

अपने पुरुष (पिता पति पुत्रों) को चाहिये कि स्त्रियों को किसी समय स्वतन्त्र न करें, और (रूप, रस, गन्ध आदि) विषयों में फंसती हुइयों को अपने वशमें टिकाए रक्खे ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति

बालकपन में पिता रक्षा करता है, यौवन में पति रक्षा करता है. और बुढापे में पुत्र रक्षा करते हैं, स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है ॥ २ ॥

भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता।
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥

स्त्री के रक्षित रहने पर प्रजा रक्षित रहती है और प्रजा के सुरक्षित रहने पर आत्मा की रक्षा होती है ॥ ४ ॥

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः

पति (वीर्य रूप से) अपनी स्त्री में प्रवेश करके गर्भ बनकर फिर यहां (पुत्र रूप से) उत्पन्न होता है । और स्त्री में फिर जन्म लेने के कारण भार्या का नाम जाया होता है ॥ ५ ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥

क्योंकि जैसे पुरुष को स्त्री सेवन करती है वैसे पुत्र को जनती है इसलिये सन्तान की शुद्धि के लिये स्त्री की प्रयत्न से रक्षा करे ॥ ६ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्

मद्य पान, दुर्जनों की संगति, पति से वियोग, इधर उधर घूमना, असमय में सोना और दूसरे के घर में वास, यह छः स्त्रियों को बिगाड़ने वाले हैं ॥ ७ ॥

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ ८

जैसे गुण वाले भर्ता से स्त्री विवाह विधि अनुसार युक्त होती है, वैसे गुणों वाली वह होती है, जैसे नदी समुद्र से।

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥

नीच जाति में उत्पन्न हुई अक्षमाला वसिष्ठ से युक्त होकर और शारङ्गी मन्दपाल से युक्त होकर पूज्यता को प्राप्त हुई ॥ ९ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः

यह तथा और भी नीच जन्मवाली स्त्रिय अपने २ पतियों के शुभ गुणों से इस लोक में उत्तमता को प्राप्त हुई हैं ॥ १० ॥

प्रजनार्थं माहाभागा पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥

उत्पत्ति के लिये बड़ा उपकार करने वाली (वस्त्राभूषणादि से) पूजा के योग्य घर की शोभा हैं, स्त्रियें और श्री घरों में एक तुल्य हैं, इनमें कोई विशेष नहीं (जैसे श्री हीन घर शोभा-वाला नहीं होता वैसे स्त्री हीन भी) ॥ ११ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ॥

सन्तान का उत्पादन, उत्पन्न हुए का पालन, और प्रति दिन अतिथि मित्रादि के भोजन आदि लोक व्यवहार का स्त्री प्रत्यक्ष कारण है ॥ १२ ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषारतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥

सन्तानोत्पत्ति, धर्म कार्य, सेवा, उत्तम प्रीति तथा पितरों का और अपना स्वर्ग स्त्री के आधीन है ॥ १३ ॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्
सृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥

पति से व्यभिचार से स्त्री लोक में निन्दा को प्राप्त होती है, और पाप रोगों (कुष्ठ आदि) से पीड़ित होती है ॥ १४ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥

स्त्री क्षेत्र रूप कही गई है, और पुरुष बीज रूप कहा गया है क्षेत्र और बीज के मेल से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है ॥ १५ ॥

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥

बीज और योनि में से बीज प्रधान कहा जाता है, क्योंकि सब भूतों की उत्पत्ति बीज के चिन्हों (रंग आकारादि) से चिन्हित होते हैं ॥ १६ ॥

यादृशं तृप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यंजितं गुणैः ॥

जैसा बीज ठीक समय पर तैयार किये क्षेत्र में बोया जाता है, वैसा वह बीज अपने गुणों से चिन्हित उस (क्षेत्र) में उगता है ॥ १७ ॥

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः
यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥

इस (विषय) में भूतकाल के जानने वाले वायु से गाई गाथाएं गाते हैं, कि पुरुष को पराई स्त्री में बीज नहीं बोना चाहिये ॥ १८ ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्

एक बार (भाइयों का) विभाग होता है एक बार कन्या दी जाती है, एक बार देने का वचन कहा जाता है, यह तीनों सत्पुरुषों के एक बार होते हैं ॥ १९ ॥

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥

जो बीज प्रवाह आन्धी द्वारा (कहीं से) लाया हुआ जिसके क्षेत्र में ऊगता है, वह बीज क्षेत्र वाले का ही हो जाता है, बोने वाला फल नहीं पाता ॥ २० ॥

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥

जिस कन्या का वाणी से सत्य किया जाने पर पति मर जाय, उसको इस विधि से अपना देवर विवाहे ॥ २१ ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तुवत्सरान्

धर्म कार्य के लिये परदेश गये पुरुष की आठ वर्ष, विद्या और यश के लिये छः वर्ष, और उपभोग आदि के लिये तीन वर्ष तक स्त्री प्रतीक्षा करे ॥ २२ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

चाहे कन्या ऋतुवाली होकर भी मरणपर्यन्त घर में रहे, पर इसे गुण हीन को कभी न दे ॥ २३ ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥

पिता से न दी हुई कन्या ऋतुमती होकर भी तीन वर्ष प्रतीक्षा करे । इस समय से पीछे अपने तुल्य पतिको स्वयं वर ले ॥ २४ ॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः

गर्भ ग्रहण करने के लिये स्त्रियें रची हैं, और गर्भ धारण के लिये पुरुष । इसलिये गर्भोत्पादन की तरह अग्न्याधाना दिभी पुरुष का धर्म श्रुति में पत्नी के साथ कहा है ॥ २५ ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥२६

मरण पर्यन्त पति पत्नीका परस्पर व्यभिचार न हो, यह संक्षेप से स्त्री पुरुष का परम धर्म जानना चाहिये ॥ २६

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥

बड़ा कुल को बढ़ाता है, बड़ा ही नाश करता है, सो गुणवान् बड़ा लोक में पुज्यतम है बड़ा श्रेष्ठों से आनन्दित

होता है ॥ २७ ॥

यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥

छोटा भाई यदि बड़े भाई की स्त्री में नियोग विधि से पुत्र उत्पन्न करे, वहां चचा के साथ क्षेत्रजका विभाग सम हो यह धर्म व्यवस्था है ॥ २८ ॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥

पुत्र पुम् नामी नरक से पिता को बचाता है, इसलिये स्वयं ब्रह्मा ने उसे पुत्र कहा है ॥ २९ ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः

द्यूत और समाव्हय को जो करे, और करवाये उन सब को राजा (ताड़े अपराधानुसार पिटवाये वा हाथादि कटवाये) और द्विजों के चिन्ह धारी शूद्रों को भी ॥ ३० ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्

यह जूआ पूर्व समय में बड़ा वैर उत्पन्न कराने वाला

देखा गया है. इसलिये बुद्धिमान् पुरुष जी बहलाने के लिये भी जूआ न खेले ॥ ३२ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥

दण्ड का भी स्वामी वरुण है, क्योंकि वह राजाओं का भी दण्डधारी है, और वेद के पार पहुंचा ब्राह्मण सारे जगत् का स्वामी है ॥ ३३ ॥

रक्षणादार्य वृत्तानां कंटकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥

सदाचारियों की रक्षा से और कांटों के शोधने से प्रजा पालने में तत्पर राजा स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमानः इव द्रुमः ॥

जिसके भुजबल का आश्रय लेकर देश निर्भय होता है, उसका देश सदा इस तरह बढ़ता जाता है, जैसे जल सेचन से वृक्ष ॥ ३५ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।
यद्वापि प्रति संस्कुर्याद् दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥

तालाब के फोड़ने वाले को जलमें डुबाने से वा शुद्ध बध से मारे, यद्वा तालाब को फिर बनवा दे और उत्तम साहस पूर्ण दण्ड दे ॥ ३६ ॥

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ।
हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥

(राजकीय) गोदाम घर, शस्त्रघर, और मन्दिरों के तोड़ने वालों और (राजकीय) हाथी, घोड़े, और रथों के चुराने वालों को बिना विचारे मारही दे ॥ ३७ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च ॥

पुल, ध्वजा, लकड़ी और मूर्तियों को तोड़ने वाला उस हरएक वस्तु को नया बनवाये और पाँच सौ दण्ड दे ॥ ३८ ॥

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥३९

थक २ कर फिर २ कामों को आरम्भ करे, काम करने वाले पुरुष को लक्ष्मी सेवन करती है ॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥

सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलि यह सब राजा के वर्ताव हैं राजा ही युग कहलाता है ॥ ४० ॥

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥

सोया हुआ (निरुद्यमी पड़ा हुआ) वह कलि होता है, निरा जागता हुआ (जानकर भी न करता हुआ) द्वापर, कर्मों में उद्यत हुआ त्रेता और करता हुआ सत्युग होता है ॥ ४० ॥

प्रविश्य सर्वभूतानि यथाचरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥

जैसे वायु सब जन्तुओं के अन्दर प्रवेश करके विचरता है, वैसे गुप्तचरों के द्वारा (सब के अन्दर) प्रवेश करे यह वायु का व्रत है ॥ ४१ ॥

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान्

जिन्होंने अग्नि को सर्व भक्षी और समुद्र को अपेय (खारी) बना दिया, चन्द्र को क्षीण होने और पूरा होने वाला बना दिया, उनको प्रकुपित करके कौन नष्ट होगा ॥ ४२ ॥

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥

जैसे स्थापन किया, और न स्थापन किया अग्नि बड़ा देवता है, इस प्रकार अविद्वान् ब्राह्मण बड़ा देवता है ॥ ४३॥

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ४४ ॥

जैसे तेजस्वी अग्नि श्मशानों में भी दूषित नहीं होता है, किन्तु यज्ञ में बुलाया हुआ फिर भी बढ़ता ही है ॥ ४४ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥

इस प्रकार यद्यपि सारे ही अनिष्ट कर्मों में वर्तमान हों, तथापि ब्राह्मण सर्वथा पूजनीय हैं, यह बड़े देवता हैं ॥ ४५॥

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥४६॥

वेद के जानने वाले यशस्वी गृहस्थ ब्राह्मणों की सेवा ही शूद्र का परम कल्याणकारक कर्म हैं ॥ ४६ ॥

इति नवमोऽध्यायः ।

अथ दशमोऽध्यायः।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः॥

अपने कर्मों में स्थित द्विजजाति तीनों वर्ण (वेद को) पढ़ें, ब्राह्मण उनको पढ़ायें न कि दूसरा दोनों क्षत्रिय और वैश्य पढ़ें यह निश्चय है॥ १॥

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णाद्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विज जाति (द्विज जन्मा) हैं चौथा एक जाति (एक जन्मा) है शूद्र पांचवा कोई वर्ण नहीं है॥ २

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते॥

सारे वर्णों में अपने तुल्य वर्ण की अक्षत योनि पत्नियों में सारे अनुलोमता से जो उत्पन्न हुवे हों वह जाति वही जाननी चाहिये॥ ३॥

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन् षडेतेऽपसदाः स्मृताः

ब्राह्मण का तीनों वर्णों की स्त्रियों में से क्षत्रिय का दोनों में से और वैश्य का एकमें से यह छः अपसद कहे हैं ॥४॥

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥५॥

यह सब तप के प्रताप से (विश्वामित्र की तरह और बीज के प्रताप से (ऋष्यशृंग की तरह समय २ पर मनुष्यों में से यहां ऊंची नीची जाति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥६॥

(जैसा कि) यह क्षत्रिय जातियें (उपनयनआदि) क्रिया के लोपसे और ब्राह्मणों के न मिलने से लोकमें धीरे २ शूद्रता को प्राप्त हुई हैं ॥ ६ ॥

चांडालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।
अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥

चांडाल और श्वपचों का ग्राम से बाहर निवास हो और यह पात्र से अलग कर देने चाहियें, धन इनका कुत्ते और गधे हैं ॥ ७ ॥

वासांसि मृतचेलानि भिन्नभांडेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥

वस्त्र मुर्दों के कपड़े हों, भोजन टूटे बर्तनों (ठेकरों में) हो, भूषण लोहे के हों, और नित २ घूमते फिरें ॥ ८ ॥

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ६

अन्न इनको टूटे बर्तन में दूसरे के आधीन करके (दास द्वारा) देना चाहिये रात को वह गाओं में वा नगरों में न विचरें ॥ ६ ॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥

दिन को कार्य के लिये राजा की आज्ञा से (अपना) चिन्ह लगाए हुए फिरें, और अनाथ मुरदे को ग्राम से बाहर लेजाएं यह मर्यादा है ॥ १० ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यनां सिद्धिकारणम् ॥

ब्राह्मण के लिये, गौ के लिये, स्त्री वा बालक की सहायता के लिये, शुद्ध भावना से देह का त्याग प्रति लोमजों को सिद्धि स्वर्ग देने वाला है ॥ ११ ॥

श्राद्धकर्मातिथेयं च दानमस्तेयमार्जवम् ।
प्रजनं स्वेषु दारेषु तथा चैवानसूयता ॥ १२

श्राद्ध कर्म, अतिथि सत्कार, दान, अस्त्येय, आर्जव, अपनी स्त्री में ही सन्तानोत्पत्ति और असूया तथा ॥ १२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

किसी को न सताना, सत्य बोलना, किसी का हक न दबाना या छानना (मट्टी जलादि से) शुद्धि, इन्द्रियों का संयम यह संक्षेप से चारों वर्णों में मनुने धर्म कहे हैं ॥ १५ ॥

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्

शूद्रा में से ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ यदि श्रेष्ठ से सन्तान उत्पन्न करे तो अश्रेष्ठ भी सातवें जन्म श्रेष्ठ जाति को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥

शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है और ब्रह्मण शूद्रता को

प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय से उत्पन्न हुए को और वैश्य से उत्पन्न हुए को जाने ॥ १५ ॥

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥

कई बुद्धिमान् बीज की स्तुति करते हैं दूसरे क्षेत्र की, तीसरे बीज और क्षेत्र दोनों की, किन्तु इस में यह व्यवस्था है।

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते

जिससे बीज के प्रताप से तिर्यग्योनि में उत्पन्न हुए ऋषि पूजनीय और प्रसनीय हुए हैं, इसमें बीज की प्रशंसा है ॥१७॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ॥

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना और दान लेना यह छै कर्म ब्राह्मण के हैं ॥ १८ ॥

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥

छः कर्मों में से तीन कर्म इनके जीविका के हैं, यज्ञ करना पढ़ाना, और शुद्धि से दान लेना ॥ १६॥

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥

तीन धर्म ब्राह्मण से क्षत्रिय के लिये हट जाते हैं पढ़ाना यज्ञ करना और तीसरा दान लेना ॥ २० ॥

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥

वैसे ही यह वैश्य के लिये भी हट जाते हैं। यह मर्यादा है, प्रजा का स्वामी मनु उन दोनों (क्षत्रिय वैश्य) के लिये यह धर्म नहीं बतलाता है ॥

शस्त्रास्त्रभृत्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥

(किन्तु प्रजा की रक्षा के लिये) शस्त्र अस्त्र का धारना यह क्षत्रिय का, और वाणिज्य, पशु पालन, और खेती यह वैश्य का जीविका के लिए है, और धर्मार्थ दान, पढ़ना और यज्ञ हैं ॥ २२ ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम्
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ।

(जीविका के लिये भी) वेदाभ्यास ब्राह्मण का, प्रजा की

की रक्षा क्षत्रिय का, व्यापार वैश्य का यह अपने कर्मों में विशेष हैं ॥ २३ ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ।

मांस के, लाख के और लवण के बेचने से ब्राह्मण जल्दी पतित होता है, और दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥ २४ ॥

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥

जो निचली जाती का लोभ से ऊंचे के कर्मों से जीविका करे उसको राजा निर्धन करके जल्दी ही निकाल दे ॥ २५ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥

अपना कर्म विगुण हुआ भी अच्छा है, न कि बेगाना चाहे बहुत अच्छा होसके, क्योंकि बेगाने कर्म से जीविका करता हुआ जल्दी जाति से पतित हो जाता है ॥ २६ ॥

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पंकेन न स पापेन लिप्यते ॥

प्राग संकट में पड़ा जो ब्राह्मण जहां तहाँ से अन्न खाता है, वह कीचड़ से आकाशवत् पाप से लिप्त नहीं होता ॥ २७ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः ।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥

अजीगर्त भूख का मारा हुआ पुत्र को मारने को तय्यार हुआ, वह भूख दूर करने को ऐसा करने पर भी पापसे लिप्त नहीं हुआ ॥ २८ ॥

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माऽधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ।

धर्म अधर्म के जानने वाला वामदेव भूख से पीड़ि हो प्राणों की रक्षा के लिये कुत्ते के माँस को चाहता हुआ (पापसे) लिप्त नहीं हुआ ॥ २९ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्षणो महातपाः ॥

महातपस्वी भरद्वाज पुत्र समेत भूख से पीड़ित हुआ निर्जन बन में वृधुतक्ष्ण से बहुत सी गौएं दान लेता भया ॥ ३० ॥

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम्
चंडालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥

धर्म अधर्म का जानने वला विश्वामित्र भूख से पीड़ित हुआ चांडाल के हाथ से कुत्ते की टांग लेकर खाने को तैय्यार हुआ॥ ३१ ॥

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ।
प्रतिगृह्याच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥

ब्राह्मण अपनी वृत्ति से न निर्वाह कर सका हुआ, शिला और उञ्छ भी जहां तहां से लेलेवे, दान से शिला अच्छा है और उससे भी उञ्छ उत्तम है ॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥३३

विद्या (चिकित्सा आदि,) शिल्प (हुनर, चित्र बनाना आदि) मजदूरी, सेवा, पशुरक्षा, व्यापार खेती, सन्तोष, भीख और व्याज यह दस जीवन के हेतु हैं ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम्

ब्राह्मणा वा क्षत्रिय व्याज न लेवें, हां (अत्यन्त आपद् में) बहुत निचले पुरुष (सूतादि) को देवें, यह भी धर्म (पंचमहा यज्ञादि के पूरा करने) के लिये, और वह भी बहुत थोड़े व्याज पर देवे ॥ ३४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः

झूठा अन्न, पुराने कपड़े, अनाज का तिलछट (वा चावलों की पिच्छ) और पुराने सामान (वर्तनादि) देने चाहियें ॥ ३५ ॥

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ।

शूद्र में कोई पातक (जाति से गिराने वाला कर्म) नहीं होता है, न वह संस्कार (उपनयनादि) के योग्य है, न इसका (द्विजों के) धर्म में अधिकार है, न धर्म से प्रतिषेध है ॥ ३६ ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मंत्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ।

(शूद्र) जो धर्म प्राप्ति की कामना वाले हैं, अपने धर्म को जानते हैं, वह यदि मन्त्र को छोड़कर (और कामों में) आर्यों के आचार में स्थित होते हैं तो प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥

धन कमाने में समर्थ भी शूद्र को धन का संचय नहीं

करना चाहिये, क्योंकि शूद्र धन पाकर ब्राह्मणों को ही तंग करता है ॥ ३८ ॥

एषधर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥

यह चारों वर्णों के आपद्धर्म कहे हैं, जिनका पूरा २ अनुष्ठान करते हुए (चारों वर्ण) परमगति को प्राप्त होते हैं ॥

इति दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥

राजा वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को यथा योग्य सारे रत्न और यज्ञ के लिये दक्षिणा (धन) देवे ॥ १ ॥

धनानि तु यथा शक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥

वेदज्ञ पवित्र ब्राह्मणों को धन यथाशक्ति देवे, इससे मर कर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्व देहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवितश्च मृतस्य च ॥ ३

कुटुम्बियों का तंग करके जो कुछ परलोक के लिये करता है, वह उसके लिये दुःख परिणाम वाला होता है जीते हुये भी और मरकर भी ॥ ३ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥

जो दुष्टों से धन लेकर भलों को देता है, वह अपने आप को नौका बना कर उन दोनों का तारता है ॥ ४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥

ब्राह्मण मर्यादा बनाने वाला, शासन करने वाला (अपराध का दंड प्रायश्चित्त देने वाला) आचार्य और सबका हितैषी कहा है, उसके लिये अनिष्ट वचन न कहे, और कठोर वचन न कहे ॥ ५

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्र हीनस्तु ऋत्विजः ।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः

अन्न हीन, मन्त्र हीन और दक्षिणा से हीन यज्ञ राष्ट्र को नष्ट कर देता है। अतः विधिहीन यज्ञ के समान शत्रु नहीं है ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥७॥

बुद्धिमान् पुरुष बिना इच्छा (बिना मर्जी) से किये पाप से प्रायश्चित्त कहते हैं, दूसरे आचार्य इच्छा करके किये में भी कहते हैं, क्योंकि श्रुति में देखते हैं ॥ ७ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥

चोरी, ब्रह्म हत्या, सुरापान और गुरु स्त्री के पास जाना, इन (कर्मों) को महापातक कहा है, और उन (महापातकियों) के साथ संसर्ग भी (पांचवां) महापातक है ॥ ८ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥

गो ब्राह्मण के लिये झट प्राणों का त्याग करे, गौ और ब्राह्मण की रक्षा करने वाला ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ९ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति

क्योंकि ब्राह्मण धर्म की जड़ है और क्षत्रिय अग्र है, इस लिये उनके समागम में अपना पाप प्रसिद्ध करके शुद्ध होता है ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद् ब्राह्मण राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्

सुरा अन्नों की मल है, और पाप मल कहलाता है, इस-लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य सुरा न पीयें ॥ ११ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंषि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत्

द्विज किसी पुरुष से, वा अपनी स्त्री से छकड़े में, पानी में, वा दिन में मैथुन करे, तो वस्त्रों समेत स्नान करे ॥ १२ ॥

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥

प्रकट करने से, पश्चात्ताप से, तप से, वेदाध्ययन, से तथा आपत्काल में, दान द्वारा पाप करने वाला पापसे छूटता है ॥ १३ ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते
नैवं कुर्या पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः ॥

पाप करके पश्चात्ताप करने से उस पाप से छूटता है। फिर ऐसा नहीं करूंगा ऐसे दृढ़ संकल्प द्वारा निवृत्ति से वह पवित्र हो जाता है ॥ १४ ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत्

भूलसे या जानकर निन्दित कर्म करके उससे छूटना चाहता हुआ दुबारा न करे ॥ १५ ॥

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषिकं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥

सारा सुख जो देवताओं और मनुष्यों का है, वेद के द्रष्टा ऋषि बतलाते हैं, इसका आदि तप, मध्य तप और अन्त तप है ॥ १६ ॥

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्

ब्रह्मण का तप ज्ञान है, क्षत्रिय का तप रक्षा करना है, वैश्य का तप व्यापार है, और शूद्र का तप का सेवा है ॥ १७ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १८

अपने ऊपर वश रखने वाले, फल फूल और वायु के खाने वाले ऋषि केवल तप से ही चराचर समेत त्रिलोकी को देखते हैं ॥ १८ ॥

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥

औषध, आरोग्यता, विद्या और अनेक प्रकार की दैवी-किन्न न, तप से प्राप्त होती हैं क्योंकि तप इन सबका साधन है ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमः ॥

जिससे पार होना कठिन है वह सब तप से ही जाना है, तप की शक्ति का कोई नहीं उलांघ सका ।

कीटाश्चाहि पतंगाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपो बलात्

कीड़े, पतंगे, साँप, पशु, पक्षी और स्थावर जीव (वृक्ष बेलादि) तप के बल से स्वर्ग को प्राप्त हाते हैं ॥ २१ ॥

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥

जो कुछ पाप मन, वाणी वा शरीर से मनुष्य करते हैं, उस सारे पाप को तपोधनी पुरुष तप से ही जल्दी जला देते हैं ॥

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ २३ ॥

तप से ही प्रजापति प्रभु ने इस शास्त्र को रचा, वैसे ही ऋषि तप से ही वेदों को प्राप्त हुए ॥ २३ ॥

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात्
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित्

जैसे अग्नि प्राप्त हुई लड़की को अपने तेज से झट दग्ध कर देता है, वैसे ही वेदवेत्ता पुरुष ज्ञान की अग्नि से सारे पापों को दग्ध कर देता है ॥ २४ ॥

ब्रह्मचर्यं जपो होमः काले शुद्धाल्प भोजनम् ।
अरागद्वेषलोभाश्च तप उक्तं स्वयंभुवा ॥

ब्रह्मचर्य, जप, होम, समय पर थोड़ा और अल्प भोजन राग, द्वेष और लोभ रहित होना यह मनु ने तप के लक्षण कहे हैं ॥ २५ ॥

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचनः

इन तीनों लोकों को भी मारकर, और जहाँ तहाँ से भी खाता हुआ ऋग्वेद को धारण करता हुआ ब्राह्मण किसी पाप को नहीं प्राप्त होता ॥ २६ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

ऋचाओं की संहिता वा यजुषों की संहिता, वा उपनिषद् समेत सामों की एकाग्र ही तीन वार अभ्यास करके सब पापों से छूट जाता है।

इति एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

मानसं मनसैवायमुपभुंक्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥

मन से किये शुभ अशुभ कर्म को मन से, वाणी से किये को वाणी से और शरीर से किये को शरीर से भोगता है।

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥

शरीर से किये कर्म के दोषों से मनुष्य स्थावर योनि को, वाणी से किये कर्मों से पक्षी और पशु योनि को और मन से किये पापों से नीच योनिको प्राप्त होता है।

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

मनुष्य इन तीनों दण्डों को सब जीवों के विषय में लगा

कर काम और क्रोध को रोक कर सिद्धि को प्राप्त होता है।

योस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः॥

इस शरीर का जो प्रवर्त्तक (काम में लगाने वाला) है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जो कर्म करता है उसको बुद्धिमान् भूतात्मा कहते हैं॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥

एक और अन्तरात्मा जीव नाम वाला है, जो सब देह धारियों का स्वाभाविक साथी है। जिस से हर एक जन्म में सारे सुख दुःख को जानता है।

असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः॥

उस (परमात्मा) के शरीर से असंख्य मूर्त्तियें निकली हैं, जो ऊंचे नीचे भूतों को सदा चेष्टा कराती हैं।

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्॥

इनमें से जो गुण जब देह में पूरा २ बढ़ता है वह तब

उस देही को उस गुण की अधिकता वाला बना देता है।

सत्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥

सत्व का लक्षण ज्ञान है, तमका अज्ञान, रागद्वेष रजस के कहे हैं, इनका यह लक्षण सब प्राणी शरीरों में व्यापक है।

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वं तदुपधारयेत् ॥

सो मनुष्य जब अपने अन्दर सुख से भरा हुआ गहरी शान्ती वाला, मानो शुद्ध प्रकाश वाला जो कुछ प्रतीत करे, उसे, सत्व निश्चय करे।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुण लक्षणम्

वेदका अभ्यास, तप, ज्ञान, शौच, इन्द्रिय संयम, धर्म का अनुष्ठान आत्म विचार ये सत्व गुण के चिन्ह हैं।

आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥

कर्मों में रुचि, धीरज न होना, निषिद्ध कर्मों का स्वीकार लगातार विषयों की सेवा यह रजोगुण के चिन्ह हैं।

लोभः स्वप्नोऽधृतिक्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता

याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥

लोभ, निद्रा, कायरपन, क्रूरपन, नास्तिक पन, आचार का त्याग, प्रमाद, और मांगना ये तमोगुण के लक्षण हैं।

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिश्यंश्चैव लज्जति।

तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुण लक्षणम् ॥

जिस कर्म को करने के पीछे, करते हुये या करने में, लज्जा आती है वह सब बुद्धिमान् को तमोगुण का चिन्ह जानना चाहिये।

येनास्मिन् कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्

न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥

जिस कर्म से इस लोक में बड़ी प्रसिद्ध चाहता है, और असिद्धि में शोक नहीं करता वह रजोगुण का चिन्ह जानना चाहिये।

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।

येन तुष्यति चात्माऽस्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ॥

जब पूरे तौर से जानना चाहता है, जिसका आचरण करता हुआ लज्जा नहीं करता है, जिससे इसका आत्मा प्रसन्न

होता है, वह सत्व गुण का चिन्ह है।

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठयमेषां यथोत्तरम् ॥

तम का लक्षण काम है, रज का अर्थ है, सत्व का लक्षण धर्म है, इनमें से अगला २ श्रेष्ठ है।

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः

सत्व गुणी देवताभाव को प्राप्त होते हैं, रजोगुणी मनुष्य भाव को प्राप्त होते हैं, तमोगुणी तियक् योनि को प्राप्त होते हैं ये तीन प्रकार की गति है।

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥

पौदे, कृमि, कीड़े, मछलियें, सर्प, कछुवे पशु और मृग ये तमोगुणी अधम गति हैं।

हस्तिनश्च तुरंगाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिता
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः

हाथी, घोड़े, शुद्र, निन्दित म्लेच्छ, सिंह, वराह, और सूअर ये तमोगुणी मध्यम गति है।

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥

चारण, सुपर्ण, दम्भी, पुरुष, राक्षस और पिशाच ये तमोगुणी उत्तम गति हैं।

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाश्चकुवृत्तयः।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥

झल्ल मल्ल, नट और खोटी जीविकाओं वाले पुरुष जूवे और मद्य पान के व्यसनी ये रजो गुणी अधम गति है।

राजानाः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥

राजे, क्षत्रिय, राजाओं के पुरोहित और वाद युद्ध के प्यारे ये रजोगुणी मध्यम गति है।

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषुत्तमागतिः ॥

गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष और जो देवता के अनुचर हैं (विद्याधरादि) तथा सारी अप्सरायें ये रजोगुणी उत्तम गति है।

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः

तपस्वि, यति, ब्राह्मण, विमानों पर विचरने वाले, नक्षत्र और दैत्य ये सत्व गुणी अधम गति है।

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः

यज्ञ करने वाले, ऋषि, देवता वेद, ज्योतीषि वत्सर, पितर और साध्य ये दूसरी सत्व गुणी गति है।

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च।
उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥

ब्रह्मा, विश्व के रचने वाले, धर्म, महान्, अव्यक्त, इसको बुद्धिमान् सत्वगुणी उत्तम गति कहते हैं।

इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्याऽसेवनेन च।
पापान् संयाति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥

इंद्रियों के लगाव से, धर्म पर न चलने से, मूर्ख अधम पुरुष पाप गतियों को प्राप्त होते हैं।

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा
क्रमशो याति लोकेऽस्मिन्तत्तत्सर्वं निबोधतः

जिस २ कर्म से यह जीव जिस २ योनि को इस लोक में क्रमसः प्राप्त होता है उस सारे को जानो।

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते।
तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते॥

जैसे २ भाव से जिस २ कर्म का सेवन करता है वैसे २ शरीर से उस २ फल को भोगता है।

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्॥

वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, इंद्रियों का संयम, अहिंसा और गुरु सेवा ये उत्तम मोक्ष साधन हैं।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति

सब भूतों में आत्मा को और सब भूतों को आत्मा में सम देखता हुआ आत्मा का पुजारी मोक्ष को प्राप्त होता है।

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयञ्च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥

वेद मनुष्यों का, देवताओं का और पितरों का सनातन नेत्र है, वेद शास्त्र अशक्य है अप्रमेय है, यह मर्यादा है।

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठा हिताः स्मृता

जो स्मृतियें वेद मूलक नहीं और जो कुदर्शन (कुतर्कों वाले दर्शन) हैं वह सब परलोक में निष्फल हैं, वह अन्धकार से प्रकटे हैं।

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च

वेद से भिन्न जो कोई हैं, वह उत्पन्न होते हैं और गिरते हैं, वह अब किसी पुरुष से किये हुये होने से निष्फल हैं, क्योंकि झूठे हैं।

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च पंचमः।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवाँ गंध यह अपनी उत्पत्ति, गुण और कर्म द्वारा वेद से ही जाने जाते हैं।

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥

सनातन वेद शास्त्र सारे भूतों का पालन पोषण करता है, इसलिए मैं इस को उत्तम मानता हूं, जोकि इस मनुष्य को

(लोक परलोक) का साधन है ।

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्सन्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

वेद और शास्त्र के अर्थ के तत्व को जानने वाला जिस किसी आश्रम में रहता हुआ यहां पृथ्वी में रहता हुआ ही मुक्त होने के योग्य होता है ।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

तप और विद्या ब्राह्मण के लिये सर्वोत्तम मोक्ष साधन हैं तप से पाप को दूर करता है विद्या से मोक्ष लाभ करता है ।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सिता ॥

धर्म की शुद्धि चहने वाले को प्रत्यक्ष, अनुमान और अनेक प्रकार का शास्त्र यह तीनों भली भान्ति जानने चाहियें ।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेद शास्त्राऽविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥

वेद और धर्मोपदेश को और शास्त्र के अविरोधी तर्क से जानता है वह धर्म को जानता है दूसरा नहीं ।

एवं स भगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥

इस प्रकार भगवान् देव ने लोकों के हित की कामना से धर्म का यह सारा गुह्य भेद मुझे बतलाया ।

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥

एकाग्र मन होकर सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म को परमात्मा में देखे, क्योंकि सबको परमात्मा में देखता हुवा मन को अधर्म में नहीं लगाता है ।

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥

परमात्मा ही उन देह धारियों के लिये कर्म योग को उत्पन्न करता है ।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥

सब का शासन करने वाला, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सोने की आभा वाला, केवल समाधि ज्ञान से जानने योग्य उस परम पुरुष को जाने ।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

इसको कई अग्नि कहते हैं, दूसरे प्रजापति, कई इन्द्र दूसरे प्राण और कई सनातन ब्रह्म कहते हैं ।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥

यह सब प्राणियों को पांचों भूतों के साथ लपेट कर जन्मवृद्धि और नाश के द्वारा सदा चक्रवत् घुमाता है ।

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥

इस प्रकार जो आत्मा से परमात्मा को सब भूतों में देखता है, वह सब की समता को प्राप्त होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है जो सब से ऊंचा पद है ।

इति द्वादशोऽध्यायः ।

* ॐ *

पुस्तकों का सूची पत्र।

वेदोपनिषद्

ईश, केन, कठ और माण्डूक्य आदि उपनिषदों का उत्तम संग्रह है। अर्थ हिन्दी भाषा में दिया है सो भी अत्यन्त सरल। आत्मा को सच्ची शान्ति देने वाली इस अनमोल पुस्तक की न्यौछावर केवल ‌-) मात्र

ज्ञानधर्मोपदेश

सागर गागर में कर दिया गया है। इस में वेद-वेदान्त की रहस्यमयी उत्तम कविताएं तथा लेख संग्रहीत हैं। मूल्य केवल -)॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मूल, अन्वय, पर्याय और सरल भाषा में अर्थ, यह सब क्रमशः इसमें हैं। गीता के परिचय देने की जरूरत ही क्या है। इतना अवश्य है कि इस टीका को किसी मत-मतान्तर के झगड़े में न डाल कर शुद्ध रखा गया है। कागज, छपाई सफाई बढ़िया, पृष्ठ-संख्या ४२६ फिर भी प्रचारार्थ न्यौछावर केवल ॥=)

भाषाफक्किका प्रकाश

संस्कृत के वैय्याकरण जानते हैं कि भट्टोजिदीक्षित की

'सिद्धान्त कौमुदी' की फक्किकाएं कितनी गम्भीर अतएव क्लिष्ट तथा दुर्बोध हैं। संस्कृत व्याकरण को सुगम बनाने के लिए इन्हीं फक्किकाओं को हिन्दी भाषा में, बड़े सुन्दर ढंग में, गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तरों के रूप में समझाया गया है। संस्कृत के विद्यार्थियों और साधारणतः पण्डितों के बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

अष्टोत्तरशतमंत्रमाला

यह गीता और उपनिषदों के चुने हुए १०८ उत्तम मन्त्रों की माला है। अर्थ हिन्दी में है। यह माला अवश्य संसार पार करने में सुदक्ष है। न्यौछावर ―)।

सत्य शब्द संग्रह

वेदान्त की उत्तम सन्त वाणियों का संग्रह है। कवित्त, सवैया आदि सभी छन्द हैं। पुस्तक बड़ी सुन्दर है। मुमुक्षुओं को इसका नित्य मनन और पाठ करना चाहिये। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि एकत्र सन्निविष्ट हैं। मूल्य ≋) मात्र

सार संग्रह

इसमें भी सार गर्भित, उपदेश पूर्ण, ज्ञान गुम्फित और भाव भरित कमनीय दिव्य कविताओं और सन्त वाणियों का सञ्चय है। संग्रह जैसा कुछ बन पड़ा है, सो इसके नाम से ही देखलो, सब का सार है। संगृह कर्तृ श्रीमती सुरजदेवी जी हैं। मूल्य ≋)

शब्द सदाचार संग्रह

इसमें सन्त महात्माओं की उत्तम वाणियों का संग्रह है। अन्त में सदाचार सम्बन्धी उपदेश हैं। मूल्य -)।

ज्ञान भक्ति योग संग्रह

पुस्तक विषय पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है। इस में पाँचों देवताओं की स्तुति है, पश्चात् भक्ति, ज्ञान और योग की भली प्रकार से मीमांसा की गई है मूल्य केवल ≈)॥

भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त

इसमें मोटे अक्षरों में मूल, पश्चात् सरल अन्वय और फिर भाषा में सरल शब्दार्थ है मूल्य ।-)

शब्द संग्रह

इसमें सन्तों की उत्तम वाणियों का सँग्रह है। पुस्तक संग्रह करने योग्य है मूल्य -)॥

भक्ति का भगवद्भक्तांक

यह भक्ति के तीसरे वर्ष का विशेषांक है। वास्तव में संग्रह करने योग्य है। इसमें देश के धुरन्धर विद्वानों सन्त महात्माओं के सुन्दर लेख हैं, भागवतों के ललित भाषा में चरित्र हैं तथा कई तिरंगे और सादा चित्रों से सुसज्जित है। छपाई, सफाई तथा कागज अत्युत्तम लगाया गया है। यह उपहार देने योग्य अत्युत्तम पुस्तक है। मूल्य केवल ॥≈)

भक्ति का भगवदंक

यह भक्ति के चौथे वर्ष का प्रवेशांक है। यह भी अपूर्व संग्राह्य पुस्तक है। इसके पढ़ने से ज्ञान का ज्ञान, सत्संग का सत्संग, भगवत् के गुणों का स्मरण तथा उनके दशों अवतारों तथा प्रधान २ भागवतों के सुन्दर चित्रों के दर्शन होते हैं। छपाई बहुत सुन्दर हुई है तथा ६ तिरंगे और सात सादे सुन्दर चित्रों से युक्त है। पृष्ठ संख्या १२८, तिस पर भी मूल्य केवल ।।।) बारह आना मात्र।

गवांक

यह पाचवें वर्ष का विशेषांक है। इसमें गोरक्षा सम्बन्धी अति उत्तम संग्राह्य साहित्य संग्रह किया गया है। यह अङ्क गोशालाओं और डेयरी फार्मों के अतिरिक्त प्रत्येक गोरक्षक के पढने और मनन करने योग्य है। उत्तम वंश की गौवों और सांड़ों के चित्र तथा कई एक रंगीन चित्रों से सुसज्जित इस अंक का मूल्य केवल १।) मात्र है।

महात्मांक

यह भक्ति के छठे वर्ष का विशेषांक है। इस अङ्क में देश विदेश के महात्माओं का जीवन चरित्र बहुत ही ललित भाषा में संग्रह किया गया है। महात्माओं के २६ के लगभग रंगीन और सादे चित्र दिये गये हैं। मूल्य १)

पुस्तक मिलने का पताः—

मैनेजर 'प्रकाशन विभाग' श्रीभगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रकः-भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" श्रीभगवद्भक्ति
आश्रम रामपुरा, रेवाड़ी।